जे० के० रेयन के डायरेक्टर

श्री गोविन्दहरि सिंहानिया

को

सप्रेम समर्पित

याद वीराने मे चमन आया,
याद आया चमन मे वीराना ।

भूमिका

कवि श्री रामस्वरूप सिन्दूर को मैंने सन् १९५५ मे सर्व प्रथम डी ए वी कालेज कानपुर के एक समारोह मे आयोजित कवि-सम्मेलन पर देखा था। तब वे एम० ए० के छात्र थे और यदि मैं भूल नही करता तो हिन्दी सभा के मन्त्री भी थे। वे ही कवि-सम्मेलन के सयोजक थे। मैं भी उमी निमित्त गया था। कवि-सम्मलन मे एकत्रित सभी कवियो ने तब, उनके द्वारा पठित गीत की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की थी। मेरी अपनी बात यह है कि मैं मन्त्र-मुग्ध सा रह गया था। तब से पर्याप्त समय व्यतीत हो गया। मैं सुनता रहा कि सिन्दूर अब उभर रहा है, निखर रहा है। अचानक इस वर्ष आगरा मे स्वतन्त्र पार्टी का जो अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन हुआ तो सिन्दूर को सुनने का अवसर मिला। कवियो के पूरे जमाव मे उनका मच पर अपने मे सकुचित बैठना, वेश-भूषा की शालीनता, कविता-पाठ मे प्रयास-हीनता, ईषत् स्मित का निरन्तर बना रहना और वेदना के पर्याय कण्ठ का आकर्षण सब ने मिल कर सिन्दूर को कवि-सम्मेलन मे मेरे हृदय का स्थायी अतिथि बना दिया। सयोग की बात देखिये कि दूसरे ही दिन मेरे एक मित्र के साथ वे मेरे घर पधारे। तब जो मैंने उनकी रचनाए सुनी तो मैं एक अप्रतिम गीतकार की कला के निकट परिचय मे आया और मुझे लगा कि सिन्दूर सचमुच हिन्दी की नई पीढी का एक दुर्लभ नक्षत्र है।

सिन्दूर की कविताओ मे जो एक कसक और वेदना मिली उसका रहस्य जब उद्घाटित हुआ तब तो मैं उनके व्यक्तित्व के प्रति और भी अधिक आकृष्ट हुआ। निसन्देह एक भरे-पूरे परिवार और सम्पन्न घर के तरुण द्वारा आसुओ की वेदी पर अपने यौवन की आहुति अपने मे ऐसी महान वस्तु है, जिस पर परम्परा ग्रसित सहस्रो तथा-कथित 'बडो का बडप्पन' निछावर है। २ मार्च '६१ के 'व्यापार सन्देश' मे कवि ने स्वय लिखा है— पिताजी दो-ढाई साल का छोडकर मरे और भाई द्वारा किशोरावस्था मे घर से निष्कासित कर दिया गया। चाचा ने जवानी मे मुख मोड कर अनन्त की ओर प्रस्थान कर दिया और मा का स्नेह यथावत् होते हुए भी सामाजिक बन्धनों के परे जाकर मेरी मान्यताओ को स्वीकार करने मे आज भी हिचकिचा रहा है। कुल मिला कर मेरे पास सघर्षशील जीवन के

अतिरिक्त कुछ नही बचा है।' इस प्रकार सघर्ष सिन्दूर के लिये जीवनागार है। तभी तो न जाने कितने पन्नो मे कलम घिस कर और भूख-प्यास से लड कर उन्हे अपने स्वाभिमान की रक्षा करनी पडी है। वे इस सीमा तक सिद्धान्तवादी है कि भूख मे किसी मित्र के घर जाना उन्हे कभी स्वीकार नही हुआ, जबकि सुख म वे उनसे घुलने-मिलने मे कभी नही हिचकते। स्वाभिमान के साथ स्पष्टवादिता भी उनके स्वाभाव का अभिन्न अग है। उनके अपने शब्द हैं—'मै स्वाभिमानी होने के साथ स्पष्टवादी व्यक्ति हू और ये दोनो ही गुण आज के जीवन मे खप नही पाते।' (३० दिसम्बर '६० का दैनिक विश्वमित्र) हमारी अपनी विनम्र सम्मति मे हर श्रेष्ठ कवि मे यही गुण होते हैं और अच्छा है कि ये बने रहे, क्योकि कवि गतानुगतिकता से परे चल कर ही अपनी प्रतिभा के साथ न्याय कर सकता है। यही वह शक्ति है, जो कवि की वाणी को आग-पानी का सगम बना कर अनेक सहृदय जनो को अनुभूति की शीतल धारा से सींचती तथा हरा-भरा बनाती है। हम ऐसे कवि-स्वभाव का गर्व से अभिनन्दन करते हैं।

कवि सिन्दूर का व्यक्तित्व जैसा पारदर्शी है वैसी ही उनकी कविता भी पारदर्शी है। लगता है, जैसे सघर्ष ने उनके अनुभूति-दर्पण पर लगी धूल को सदा-सदा के लिये पोछ दिया है। कदाचित यही कारण है कि 'दर्पण' का प्रतीक उन्हें सर्वाधिक प्रिय है। दर्पण अत्यन्त कोमल होता है, तनिक-सी असावधानी उसको सौ-टूक करने के लिये पर्याप्त है। सिन्दूर ने अपने तन और मन दोनो को दर्पण कह कर हृदय की कोमलता का परिचय दिया है। उन्होंने लिखा है—

दर्पण हू, दर्पण मैं, दर्पण वह चमकदार,
एक चोट जिसके कि हजार जगह लगती है।

× × ×

समझदार के लिये इशारा काफी है,
कल तक था जो काच, आज वह दरपन है।

× × ×

मुख न निहारो इस दर्पण मे।
मुझे गिराया है ऊंचे से
तेज़ हवा ने बहुत ज़ोर मे,
चूर-चूर तो नही हुआ पर
दरक गया मैं कोर-कोर से,
रहने दो अपशकुन मत करो
सुबह-सुबह इस मधुरिम क्षण मे।

× × ×

देह दर्पण-सी दमकने लग गई है,
सौ दियो की ज्योति मन मे जग गई है।

ऐसे पारदर्शी व्यक्ति की कविता अनुभूति के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकती है। यही कारण है कि स्वय कवि ने भी अपने को 'अनुभूतियों का अनुवादक' कहा है। व्यक्तित्व की यह कोमलता या दर्पणत्व ही सिन्दूर की कविता का प्राण है। इसी ने उन्हे संघर्ष मे भी उस विहगिनी की भाति गाने को विवश कर दिया है, जो घोर दोपहरी मे किसी वृक्ष की डाल से चहक कर जीवन की जय का घोष करती रहती है।

जैसा हृदय सिन्दूर ने पाया है वैसा हृदय सामाजिक विद्रोह के हाथो यदि चूर-चूर नही हुआ तो उसका कारण उसकी सयमशीलता तथा साहसिकता है। 'दर्द के मुह पर हसी है' शीर्षक गीत मे उन्होंने लिखा है—

कैद हू मैं सयमी दीवार में पहरे कडे हैं,
जिस तरफ़ नजरें उठाऊ, विष बुझे भाले जडे हैं,
गुनगुनाहट भी परिधि के 'पार जा पाती' नही है,
फूल है जिस ठौर बन्दी, गन्ध भी 'बैठी' वही है;

जो मुझे नक़ली बताये,
श्वास मेरे पास आये,

बेबसी की गोद मे चन्दन पडा है
और खुशबू नाग के भुजपाश मे है।
सेज फूलो की सजाये चाव बैठा
जिन्दगी वैराग के भुजपाश मे है।

यह गीत कवि के काव्य का भाष्य है। इसमे उसका समस्त जीवन अनुभूतिमय होकर शब्दो मे मूर्त हो गया है। सामाजिक लाछनो और वर्जनाओं की ओर सकेत कर कवि ने इस गीत मे जवानो मे सन्यासी होने, एकाकी व्यथा सहने, आइने जैसे हृदय पर पहले उपेक्षाघात के उभर आने और कीर्ति के कलक के भुजपाश मे बन्दी बनने की बात कही है। इसी गीत की एक पक्ति है— 'गीत माखन-चोर कल था, सारथी है आज मेरा।' यह पक्ति कवि के प्रकृत कवि होने तथा काव्य के क्षेत्र मे कुछ अभूतपूर्व देन देने का विश्वास दिलाती है।

'देन को केवल परिचय है,' शीर्षक गीत भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस गीत मे कवि ने अपने को सयम के कारागृह से भागे हुये बन्दी और काम के प्रतिद्वन्दी के रूप मे प्रकट कर आत्म-परिचय दिया है। प्रेम के कारण कवि को घर से निर्वासित होना पडा, पर उसे सतोष है कि वह अपनी कठिन भूमिका का सफलता-पूर्वक अभिनय कर रहा है। जिस सादगी से उसने घर छोडने की बात कही है वह उसके हृदय की विशालता की परिचायक है। लिखा है—

अपना भी परिवार बडा था,
सत्ता का थोडा झगडा था,
राजी और खुशी मे मुझको बटवारे मे मिला हृदय है।

प्रसन्नता-पूर्वक वैभव के समकक्ष हृदय को बडा मान लेना कोई हसी-खेल नहीं है। यह बडे साहस का कार्य है और इसे कवि, सच्चा कवि ही कर सकता है, क्योंकि हृदय का धन ही कवि का सर्वस्व होता है। कवि सिन्दूर ऐसे ही हृदय के धनी हैं। उसके बल पर वे *अभाव और पीडा* को भी सौभाग्य का कारण मानते हैं। मूक वेदनामयी खण्डित मूर्तियो को अपनी समर्थ साधना से प्राणवान बनाकर, जन-जन के लिये जीवन के कण-कण को उत्सर्ग कर देने का सकल्प उनके हृदय की विशालता का सूचक है।

कवि सिन्दूर की कविता की एक विशेषता—उनका अभिनव पथ चुनना है। सयम और साहस का धनी कवि कभी ऐसा मार्ग नही चुन सकता जो घिसा-पिटा है, रूढिगत है; वह तो निराला ही मार्ग चुनता है। अपनी कविताओं मे इस तथ्य को सिन्दूर बार-बार व्यक्त करते हैं—

उमर 'सिन्दूर' की खामोशियो में गर्क हो जाती,
कदम आगे न होते छोड कर पथ अनुसरण-वाले।

× × ×

'सिन्दूर' रूढ़ियो से रिश्ता न तोड देते,
इस भ्रम मे डूब जाते, उस क्रम मे डूब जाते।

नवीन पथ के पथिक होने के नाते वे गतिशील हैं। हर ऐसे पथिक को जो नवीन पथ चुनता है, काटो को कुचल कर अपना पथ-प्रशस्त करना पड़ता है। लेकिन चले चलना ही सफलता का मूल मन्त्र है। कवि सिन्दूर ने इस विषय मे कहा है—

रुक न सका मैं वहा, जहा से आगे गया न पथ है,
मोड दिया इसलिये विवश हो पीछे, गति का रथ है,
जकड लिया था मुझे मौत ने, जीत हुई पर मेरी
कल तक इति थी मंजिल मेरी, आज हो गई अथ है।

अब तनिक कवि के अहं की भी झलक देखिये। यह अहं उसे जिन्दगी मे समझौता नही करने देता। 'कैसी जिन्दगी है' शीर्षक गीत और 'हम अजाने रहे नाम होते हुए' से आरम्भ होने वाली गज़ल मे कवि ने अपने को 'खैयाम' कहा है। खैयाम से बढ़कर वेदना का गायक विश्व मे दूसरा नही हुआ। लेकिन इस खैयाम का जीवन एक पीडा की मूर्ति के समक्ष मक्खन सा द्रवित हो गया है। वह कहता है—

भूल गया मैं सब कुछ जब से
तेरी पीडा पहचानी है,
मस्तक पर ये झलकी बूंदें
तेरी आखो का पानी है,
रुकने का न बहाना कोई
राह पडी है सूनी मेरी,
पथ ने मेरी काया घेरी
मैंने पथ की काया घेरी,

जिसकी पीडा कवि ने पहचानी है उसके अतिरिक्त उसका कोई अन्य साथी नही है। समस्त विश्व की उपेक्षा का पात्र कवि उसके प्यार को आत्मा की धरोहर बनाकर जीता है और रातरानी के फूलो की महक अथवा हर-सिंगार की वर्षा मे उसका रोम-रोम अपनी उस प्राण-प्रतिमा का श्रृंगार करने को विकल हो उठता है। घनानन्द ने 'बिछुरे-मिलें प्रीतम शान्ति न मानें' कह कर प्रेमी का जो आदर्श निश्चित किया है वही आदर्श सिन्दूर अपने समक्ष रखते प्रतीत होते हैं। उनकी स्वीकारोक्ति है— 'मेरे जीवन मे सयोग अधिक है वियोग कम। फिर भी मुझे विरह के स्वर अधिक प्रिय हैं। विरह शब्द के स्थान पर 'अभाव' शब्द मैं अपने लिये अधिक सार्थक मानता हू।' अपनी प्राण-प्रतिमा के नयनो मे अश्रु देख कर कवि पूछता है—

मैं समीप बैठा हू तेरे,
तुझको मेरी छाया घेरे,
मुक्त, मृदुल-शीतल समीर ने
पीर कौन ढाली तन-मन मे!
भर आया क्यों नीर नयन मे?

जिसके लिये कवि ने ससार से शत्रुता मोल ली, उसकी आखो की सजलता उसके लिये सह्य नही हो सकती। वह अपने प्राण देकर भी उसे प्रफुल्लित देखना चाहता है। सिन्दूर की अनेक पक्तिया इसी समर्पण-भावना से उद्भूत हैं और उनकी प्रेषणीयता निर्विवाद है।

इस प्रसग में एक बात और कहने का मन हो रहा है। कवि सिन्दूर की रचनाओ को पढ कर ही वह बात हमे सूझी है। वह बात यह है कि उनकी प्राण-प्रतिमा के अतिरिक्त एक अन्य नारी मूर्ति भी उनके गीतो मे झाकती है। इस नारी मूर्ति की शीतल छाया मे समाज से किये गये विद्रोह का कलक वे भूल बैठे हैं और अपने को धन्य मानते हैं। वे गद्गद् कण्ठ से उस करुणामयी से निवेदन करते हैं।

अचल अपना करो न मैला
मुझ पर धूल चढ़ी रहने दो,
एक और झोका आने तक
करुणा मे यो-ही बहने दो,

रूप तुम्हारा रख न सका है
मुझको अपने संरक्षण में।
मुख न निहारो इस दर्पण में।

लेकिन सिन्दूर अपनी प्राण-प्रतिमा को अर्घ्य चढायें या अन्य किसी वरदानी मूर्ति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करें, अपने संयम और समर्पण-शील हृदय की वेदना को सहज ही मार्मिक शैली में प्रकट कर देते हैं।

यह वेदना उनकी व्यक्तिगत अवश्य है पर वह उन जैसे अनेक समान-धर्माओं की भावनाओं को भी मुखर करती है। हम यह समझते हैं कि जब भी यह कवि अपनी संघर्षजनित व्यथा से त्राण पायेगा, मुक्त कण्ठ से हुंकार भरेगा। अपने एक मुक्तक में उसने अनायास इसका आभास भी दे दिया है—

आज आसव या कि अमृत कुछ न पीना,
और ही कुछ चीज़ है अए दर्द जीना,
पी गये आसू न जाने उम्र कितनी
चाहता हूं शेष पी जाये पसीना।

अन्तिम पंक्ति में व्यक्त अभिलाषा जब क्रियात्मक रूप लेगी, तब कवि की वाणी जनता-जनार्दन के सुख-दुख को अवश्य गुंजित करेगी, यह हमारा दृढ विश्वास है।

जहा तक शिल्प का सम्बन्ध है, कवि ने गीत, गजल और मुक्तक तीन प्रकार की रचनाएं दी हैं। गीत के सम्बन्ध में कवि ने स्वयं लिखा है–'जब कोई भाव या पंक्ति मन में उलझकर रह जाती है उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते-जागते एक लय-सी चेतना पर छाई रहती है और धीरे-धीरे दो-चार आठ-दस दिनों में जब वह भाव या पंक्ति एक गीत के रूप में निखर आती है तब कही कागज-कलम की जरूरत होती है। यही कारण है कि मेरे प्रत्येक गीत में भिन्न छन्द के साथ भिन्न लय का भी समावेश रहता है।…… मेरी वेदना संगीत से प्यार करती है, इसलिये गीत या गीत की ही तरह की चीजें लिखना मेरा स्वभाव हो गया है। एक ओर भाव चलता है दूसरी गुनगुनाहट। दोनों मिल कर छन्द को जो रूप देते हैं वह मेरे मन का होता है।'

गीत के सम्बन्ध मे कवि के इस स्पष्टीकरण से उसकी कला को हृदयगम करने म सरलता होती है। गीत की पहली शर्त अनुभूति की प्रयास-हीन अभिव्यक्ति है तो दूसरी शर्त भावान्विति है। कहना न होगा कि सिन्दूर के गीत इस कसौटी पर खरे उतरते है। लम्बे-लम्बे गीतो म भी एक पक्ति शिथिल या भरती की नही मिलती और बन्द के साथ की टेक गीत की उद्भावक पक्ति की भावना को तीव्रतर से तीव्रतम बनाती चली जाती है। अच्छे से अच्छे गीतकार मे हम यह त्रुटि मिली है कि भाव-शृ खला ने अन्त तक साथ नही दिया, किन्तु सिन्दूर के गीत इस दोष से मुक्त हैं। कदाचित इसका एक कारण यह है कि अनुभूति को भाव मे ढालने के साथ ही उनका विवेक भी जाग्रत रहता है जो गीत को कागज पर तभी आने देता है जबकि वह साचे मे पूरा 'सेट' हो लेता है।

गजलो के सम्बन्ध मे उनका कथन है-'गजलो का सा अन्दाज हिन्दी गीतो मे पैदा हो सके, इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये पहले मुझे कुछ गजलें लिख लेना अधिक श्रेयस्कर लगा' (दैनिक विश्वमित्र, ३० दिसम्बर ६०) यदि अत्युक्ति न मानी जाय तो हम कहगे कि गजलो मे सिन्दूर को गीतो जैसी ही सफलता मिली है और उनकी गजलें उर्दू के जाने-माने शायरो से टक्कर ले सकती हैं। हा, कुछ तो खालिश उर्दू की हैं और कुछ उर्दू से प्रभावित हैं। खालिश उर्दू की गजलों मे 'कोई बयाबा मे आज मुझको पुकार देकर चला गया है,' जैसी लम्बे मिसरे (चरण) वाली और 'आख को बेहिजाब रहने दे' जैसी छोटे मिसरे वाली गजलें दोनो ही साफ उतरी हैं। इनमे काफिये, तुकें और रदीफ (काफिये के बाद ज्यो के त्यो रहनेवाले शब्द) प्रभावशाली हैं। उर्दू प्रभावित हिन्दी की गजलो मे 'कहा तूफान आये है अभी वे सतरण-वाले' और 'जिन्दगी मागी हुई सौगात है' या 'हम तुम में डूब जाते तुम हम में डूब जाते' में हिन्दी के काफिये और रदीफ बडी दूर तक सार्थक है और कवि के भावाधिकार के सूचक है।

और मुक्तक? कवि के शब्दो में 'कभी-कभी जब एकाएक कोई भावना कविता बनने के लिये उत्सुक हो उठती है और उसका कविता के रूप में अधिक विस्तार वाछित नही होता या उसका अधिक काव्य-विस्तार प्रभावोत्पदकता में विघ्न डालता है तो मैं उसे मुक्तक में बाध लेने का प्रयास करता हू।' (दैनिक विश्वमित्र ३० दिसम्बर '६०) वस्तुत मुक्तक उर्दू छद रुबाई का पर्याय है। रुबाई मे दो शेरों मे एक ही भाव होता है और प्रथम,

द्वितीय तथा चतुर्थ चरण के तुकान्त मिलते हैं। हमारी विनम्र सम्मति मे मुक्तक जीवन के सत्य को व्यक्त करने का प्रभावशाली माध्यम है। कोई अनुभूत-सत्य चार पंक्तियो मे ऐसा व्यक्त होता है कि पाठक या श्रोता उसे सुन कर एक बार तो हिल उठता है। कवित्त या सवैये की अतिम पक्ति की भाति मुक्तक का अतिम चरण सर्वाधिक प्रभावोत्पादक होता है। सिन्दूर ने मुक्तक जहा जीवन के सत्य को व्यक्त करने के लिये लिखे है वहा मन स्थिति के चित्रण के लिये भी उनका उपयोग हुआ है। जीवन के सत्य का रूप इस मुक्तक में देखिये, जिसमे उन्होंने जीवन की परिभाषा दी है—

जिन्दगी तूफान से डरती नही है,
आख मे आसू कभी भरती नही है,
लाख कोशिश कर मरें सौ-सौ बहाने
गुप्त समझौता कभी करती नही है।

मन स्थिति का चित्रण करने वाले मुक्तक का नमूना यह है—

खोने को मेरा कुछ रोज रोज खोता है,
रोने के क्षण मे भी प्राण नही होता है,
कुछ भी तो बात नहीं आज, किन्तु जाने क्यो
आखो से छलक पड़े पानी, मन होता है।

सब मिला कर सिन्दूर ने छन्दो म उर्दू-हिन्दी के मिश्रण से एक नया मार्ग अपनाया है। काफिये और रदीफ की सहायता से उनके गीतो मे भी वही चोट है जो गजलो और मुक्तको में है। 'कैसी जिन्दगी है' गीत इस दृष्टि से उनकी छन्द शास्त्र-पटुता का प्रमाण है, जिसमे कसावट और सफाई दोनो का गगा-जमुनी सगम है।

कुछ गीतो मे ग्रामीण वातावरण के स्पर्श से लोक गीतो का मार्दव पैदा करने की भी चेष्टा उन्होंने की है। 'नीद नही आने की' 'बह-बह जाते हैं ये लोचन' और 'निशि मे न पढाना कीर' ऐसे ही गीत हैं 'बूदो की डुलियाँ' 'अन्तर की सिजिया' 'सरसिज की पखिया' 'हुठकी सखिया' जैसे प्रयोगों से इन गीतो मे और भी अधिक कोमलता आ जाती है।

स्थिति अथवा दृश्य चित्रण मे वे कभी कभी गत्यात्मक वस्तु को स्थितिशील और स्थितिशील को गत्यात्मक बनाकर प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के

लिये 'जब अजाने झूमकर यों-ही देख लेता है मुझे दर्पण'वाली पंक्ति लीजिये। इसी प्रकार 'चले चलो बादल की चलती इस छाव में' का भी प्रयोग दृष्टव्य है।

यदि चित्रात्मकता काव्य की भाषा का सबसे बड़ा गुण माना जाय तो सिन्दूर की भाषा बड़ी समर्थ है। प्रेरणाहीनता की मन स्थिति का यह चित्रण देखिए, जिसमें कुनन-मुनन कर रह जाने के बिम्ब से चित्र पूरा निखर आया है—

स्वर ऐसा न कभी सोता था,
सुध-बुध तो न कभी खोता था,
तन को धीरे-से छूते ही
पलकें खोल सजग होता था,

यदि कुछ उपमाए ऐसी सार्थक हैं, जो कवि की वेदना, खीझ, आत्म-विश्वास और संघर्ष-प्रियता सबको एक साथ व्यक्त करने में समर्थ हैं—
'बिखर गई जिन्दगी कि जैसे बिखर गई रत्नों की माला'
'आम चर्चा है कि मेरी प्यास है गुमराह छोरी'
तो कुछ विरोधाभास और भी मोहक है—
'मैं इस तरह हुआ जन-जन का, कोई भी न रह गया मेरा'
'वैरागी सपना घर लौटा, राजकुवर के वेप में'

इनके अतिरिक्त 'सयमी दीवार' 'हठी सगीत' जैसे प्रयोग भी उनकी विशेषता कहे जा सकते हैं। अभिप्राय यह कि शिल्पगत विशेषताओं की दृष्टि से भी सिन्दूर की कविता अपनी विशेषता रखती है।

हम विश्वास के साथ यह कह सकते हैं कि कवि की साधना कम न होगी और हिन्दी को उसके द्वारा गौरव एव गर्व करने योग्य रचनाए मिलती रहेंगी। इस विश्वास का कारण यह है कि उसका जीवन कविता से भी अधिक वन्दनीय तथा अभिनन्दनीय है।

हिन्दी विभाग
आगरा कालेज,
आगरा।

वज्रविहारी शर्मा 'कमलेश'

दो बातें

मेरी कल तक की मच की रचनायें आज 'हसते लोचन रोते प्राण' काव्य-सग्रह के रूप म आपके सामने हैं। मैं जानता हू कि जब कभी भी आपने इन्हे खुले हृदय से सुना है, ये रचनाए आपको अच्छी लगी हैं और मेरा यह विश्वास है कि खुले हृदय से पढे जाने पर ये रचनायें पढने मे भी अच्छी लगेंगी।

इस सग्रह की अधिकाश रचनाए सन् १९५४ से १९६० के बीच की हैं। सग्रहीत मुक्तक उस समय के लिखे हुए हैं जब हिन्दी के गीतकारो मे मच पर काव्य-पाठ करने के पूर्व मुक्तक सुनाने का 'फैशन' नही था। मुक्तकों से मैंने मात्रिक दोष—जो कि उर्दू रुबाई या क़ता की अपनी एक विशेष शैली है, का परिहार कर उन्हे हिन्दी के शुद्ध मात्रिक छन्द के रूप में प्रस्तुत किया है और कुछ मे सार्थक उपमाओ का समावेश कर प्रत्यक्ष-प्रभाव जैसी चीज उत्पन्न करने की चेष्टा की है। सग्रह के अन्त मे दिये गये कुछ मुक्तकों को छोड कर शेष मुक्तक इस कसौटी पर खरे उतरेंगे।

इस पुस्तक मे मैंने अपनी वे उर्दू गजलें भी दे दी हैं जो हिन्दी मे गजलें लिखने और गीतो मे उर्दू गजल जैसी रवानगी तथा प्रत्यक्ष-प्रभाव उत्पन्न करने की मजिल तक ले जाने मे मेरी सहायक हुई हैं। मेरी उर्दू की ग़जलो म भी आपको हिन्दी गीत का ही वातावरण मिलेगा। 'हसते लोचन—रोते प्राण' के प्रारम्भ के गीत इन्ही ग़जलो को लिखने के बाद लिखे गये हैं और मैं समझता हू कि ये गीत मेरी अनुभूतियो का अनुवाद करने में समर्थ सिद्ध हुए हैं।

हिन्दी गजलो का क्षेत्र अभी भी मैं नया ही मानता हू, क्योकि हिन्दी में जो गजलें अभी तक लिखी गई हैं, वे न तो उर्दू के वातावरण से ही मुक्त हो पाई हैं, न उनमें नवीन रदीफ-काफिये ही अपनाये गये हैं और परिणाम यह हुआ है कि उनमें हिन्दी काव्य का वह स्तर नही उभर सका है, जिसकी मैं कामना करता हू। हिन्दी में सफल गजलो का प्रणयन एक दुरूह उपलब्धि

होगी, क्योकि हिन्दी गीत सामासिक पदावली स मुक्त हो चुका है जबकि सामासिक पदावली उर्दू गजल की एक अपनी विशेषता है। मैं हिन्दी गजल के क्षेत्र में उतरने का इच्छुक हू। और मेरी यह इच्छा इसलिये और अधिक बलवती हो उठी है क्योकि मेरी हिन्दी गजलो को साहित्य मर्मज्ञो ने पसन्द किया है।

अपने गीतो के विषय में मैं क्या कहू। गीतो के बहाने अपनी राम–कहानी कहने लग जाऊगा और उससे आपको क्या सरोकार। पाठक या स्रोता के लिये कवि सिन्दूर का महत्व हो सकता है, व्यक्ति रामस्वरूप का नही। अत इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि मेरी कविता—मेरी जिन्दगी की बोलती छाया है। मेरी इधर की रचनाओ को पढ कर, हो सकता है आप मुझे विरोधाभास का कवि कह बैठें। मुझ आपकी इस मान्यता पर कोई आपत्ति नही, केवल एक सकेत निवेदित है और वह यह कि मेरा आज तक का जीवन विरोधाभास का एक जीता-जागता उदाहरण है। मै समझता हू कि आप मेरी बात का विश्वास करेंगे और यदि नही तो आप किसी दिन मुझे दर्शन दें और एक जिज्ञापु की भाति अपनी शकाओ का समाधान करें।

प्रस्तुत सग्रह के प्रकाशन में जिन मित्रो का सहयोग रहा है उनके प्रति आभार प्रदर्शन जैसी औपचारिकता का अनुसरण कैसे करू।

५०/२८० नौघडा,
कानपुर।

रामस्वरूप सिन्दूर

क्रम

गीत :

गज़लें :

मुक्तक :

चित्रा स्टूडियो के सौजन्य

दर्द के मुंह पर हंसी है

सेज फूलो की सजाये चाद बैठा,
जिन्दगी वैराग के भुजपाश मे है।

लोग कहते हैं कि मैंने सोम-घट जूठे किये हैं,
मानसर की बात क्या, सातो समुन्दर पी लिये हैं,
आम चर्चा है कि मेरी प्यास है गुमराह छोरी,
कल अमृत से खेलती थी, आज विष मे उम्र बोरी;

कान का कच्चा जहा है,
आख क्या जाने कहा है,

शीश पर सूरज, चतुर्दिक घूनिया हैं
प्राण मेरा आग के भुजपाश मे हैं।

कैद हू मैं सयमी दीवार मे, पहरे कडे हैं,
जिस तरफ नजरें उठाऊ विष बुझे भाले जड़े हैं,
गुनगुनाहट भी परिधि, के पार जा पाती नही है,
फूल है जिस ठौर बन्दी, गन्ध भी बैठी वहीं हैं,

जो मुझे नकली बताये,
श्वास मेरे पास आये,

बेबसी की गोद मे चन्दन पडा है
और खुशबू नाग के भुजपाश मे है।

इस जवानी मे हठी सगीत सन्यासी हुआ है,
अनयके अवरोह ने गहराइयो का तल छुआ है,
मैं वहीं पर हू, जहा बजती नही शहनाइया हैं,
बोलती परछाइयो से गू जती तनहाइया हैं,

उम्र जो नगमा दबाये,
भूलती है भूल जाये,

कामना का नाम मीरा हो गया है
आज अजलि त्याग के भुजपाश मे है।

आइने पर चोट पहली नवश होकर रह गई है,
किस तरह भूलू कहानी, जो अनागत से नई है,
गीत माखनचोर कल या, सारथी है आज मेरा,
यो बुझा मेरा सवेरा, हो गया रौशन अधेरा;

दर्द के मुह पर हसी है,
बात कुछ ऐसी फसी है,

हाथ फैलाये गगन बेसुध खडा है
कीर्ति मेरी दाम के भुजपाश मे है।

सांसों वाले तार चढ़ गये

मैं प्रसग-वश कह बैठा हूं तुमसे अपनी राम-कहानी !

मेरे मनभावन मंदिर मे बैठी हैं खंडित प्रतिमायें,
विधिवत् आराधन जारी है, हंसी उड़ाती दसों दिशायें;
मूक वेदना के चरणो मे मुखर वेदना नत-मस्तक है,
जितनी हैं असमर्थ मूर्तिया, उतना ही समर्थ साधक है;

एक ओर जिन्दगी कामना, एक ओर निष्काम कहानी !
मैं प्रसंग-वश कह बैठा हूं तुमसे अपनी राम-कहानी !

बिखर गई जिन्दगी कि जैसे बिखर गई रत्नों की माला,
कोहनूर कोई ले भागा, तन का उजला मन का काला;
हारा मेरा सत्य कि जैसे सपना भी न किसी का हारे,
सांसों-वाले तार चढ़ गये, जो वीणा के तार उतारे;

खास बात ही तो बन पाती है दुनिया की आम-कहानी।
मैं प्रसग-वश कह बैठा हू तुमसे अपनी राम कहानी।

एक ज्वार ने मेरे सागर को शबनम म ढाल दिया है,
कहने को उपकार किया है, करने को अपकार किया है,
प्रखर ज्योति ने आज दिया है ग्राखो मे भरपूर अधेरा,
मैं इस तरह हुआ जन-जन का कोई भी रह गया न मेरा,

कामयाब है जितनी, उतनी ही ज्यादा नाकाम कहानी।
मैं प्रसग-वश कह बैठा हू तुमसे अपनी राम-कहानी।

निर्वसना प्ररणा कुन्तला बीच छिपाये चन्द्रानन है,
आमू ही पहचान सकेगा, लहरें गिन पाया सावन है,
मेरा यह सौभाग्य कि मुझको हर अभाव धनवान मिला है,
पीडा को बाहर जैसा ही घर मे भी सम्मान मिला है,

नाम कमाने की सीमा तक हो बैठी बदनाम कहानी।
मैं प्रसग-वश कह बैठा हू तुमसे अपनी राम-कहानी।

देने को केवल परिचय है
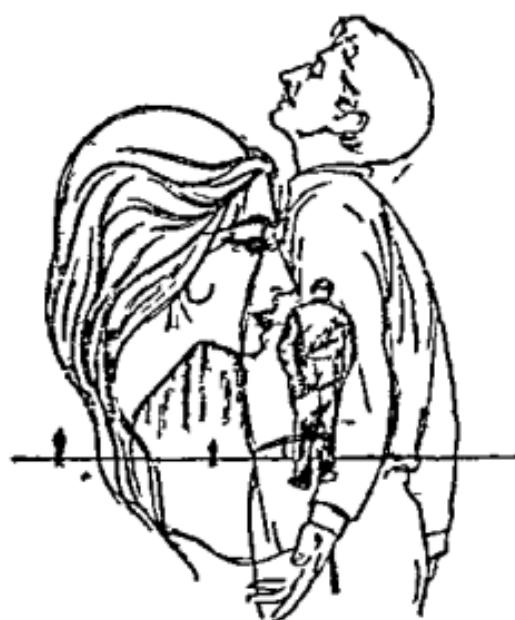
मैं ऐसा दानी हूँ जिस पर देने को केवल परिचय है।

मैं संयम के कारागृह से भागा हुआ एक बन्दी हूँ,
और दूसरी ओर काम का जाना-माना प्रतिद्वन्दी हूँ,
मुझको प्यार शरण दे बैठा मन की जाने किस उलझन में,
बीत रहे दिन रूपमहल के इस गुलशन में, उस गुलशन में,

यह जग राजकुंवर कहता है,
पर जीवन उलटा बहता है,

कठिन भूमिका मुझे मिली है, किन्तु सफल मेरा अभिनय है।

एक चोट थी, जो दर्पण को घर से निष्कासित कर बैठी,
एक चोट इसके दर्पण से आनन उद्भासित कर बैठी,
क़ीमत घटती–बढती रहती रक या–कि सम्राट सभी की,
लेकिन मैं हू, कीमत जिसकी निर्धारित हो चुकी कभी की,

मेरा भी परिवार बडा था,
सत्ता का थोड़ा झगडा था,

राजी और खुशी से मुझको बटवारे मे मिला हृदय है।

दुर्दिन ने वह चाल चली है साप मरे औ' लकुटि न टूटे,
जो मुझ बिन आकुल रहते थे, एक–एक कर साथी छूटे;
सात समुन्दर पार किये हैं, पर ओझल है अभी किनारा,
एक और सागर बन बैठा प्राणवान सन्तरण बिचारा;

अथ-इति के सुनसान भवन मे,
आधी – पानी वाले क्षण मे,

देख रहा हू साहस मेरा कमसिन होकर भी निर्भय है।

बदनसीबों में हुआ सरनाम

हर सुबह, हर शाम मैं नाकाम,
कैसी जिन्दगी है !
बदनसीबो मे हुआ सरनाम,
कैसी जिन्दगी है।

हर सुहागिन छाह का दामन कटीला,
हर शिवालय रुख लिये बैठा नुकीला,
हर अतिथिशाला भरी बारातियो से
हर चमन बैठा रचाये रास-लीला,

तमतमाती धूप मे आराम,
कैसी जिन्दगी है।
बदनसीबों मे हुआ सरनाम,
कैसी जिन्दगी है।

एक जल-कण ने अधर पर प्यास धर दी,
एक परिचय ने अपरिचित सृष्टि कर दी
मूर्छना थी एक, चिर जागृति बनी है
एक रंग ने हर दिशा मे रात भर दी,

श्वास के पल म हज़ार विराम,
कैसी ज़िन्दगी है।
बदनसीबो मे हुआ सरनाम,
कैसी ज़िन्दगी है।

जो बिकाऊ है, वही सोना यहा है,
और जो सोना उसी का तो जहा है,
धूल जो तैयार बिकने को नही है
उस बिचारी का ठिकाना ही कहा है,

अश्क पी कर जी रहा खैयाम
कैसी ज़िन्दगी है।
बदनसीबो म हुआ सरनाम,
कैसी ज़िन्दगी है।

वैरागी सपना घर लौटा

अन्तर की आवाज़ ने,
सासों के अन्दाज़ ने,
मुझे बताया है कोई आता होगा।

खोया अपनी चाल मे,
उलझा मन के जाल में,
सूरज कभी, कभी शशि बन जाता होगा।

आज लेखनी 'आसू' को लिख कर रह जाती 'आस' है,
खुल–खुल जाते हैं वातायन, छू जाता विश्वास है;
आंख अटक जाती जाने क्यों सूने–सूने द्वार मे,
डूबा सा जाता है जीवन बरसाती रसधार में;
छनक–छनक जाती छागल सी कौन कहे किस ओर से,
रात गये सोया था लेकिन जाग गया हूं भोर से;

गति के चपल पांव से,
सम्मुख बैठे गांव से,
आगे–आगे कोई भरमाता होगा।

एक जल-कण ने अधर पर प्यास धर दी,
एक परिचय ने अपरिचित सृष्टि कर दी,
मूर्छना थी एक, चिर जागृति बनी है
एक रंग ने हर दिशा मे रात भर दी,

श्वास के पल मे हज़ार विराम,
कैसी ज़िन्दगी है।
बदनसीबो मे हुआ सरनाम,
कैसी ज़िन्दगी है।

जो बिकाऊ है, वही सोना यहा है,
और जो सोना उसी का तो जहा है,
धूल जो तैयार बिकने को नही है
उस बिचारी का ठिकाना ही कहा है,

अश्क पी कर जी रहा खैयाम
कैसी ज़िन्दगी है।
बदनसीबों मे हुआ सरनाम,
कैसी ज़िन्दगी है।

वैरागी सपना घर लौटा

अन्तर की आवाज़ ने,
सासों के अन्दाज़ ने,
मुझे बताया है कोई आता होगा।

खोया अपनी चाल में,
उलझा मन के जाल में,
सूरज कभी, कभी शशि बन जाता होगा।

आज लेखनी 'आसू' को लिख कर रह जाती 'आस' है,
खुल-खुल जाते हैं वातायन, छू जाना विश्वास है;
झाख भटक जाती जाने क्यों सूने-सूने द्वार में,
डूबा सा जाता है जीवन बरसाती रसधार में;
छनक-छनक जाती छागल सी, कौन कहे किस ओर से,
रात गये सोया था लेकिन जाग गया हू भोर से;

गति के चचल पाव से,
सम्मुख बैठे गाव से,
आगे-आगे कोई भरमाता होगा।

कल तक जो सस्मरण प्राण में चुभ जाते थे शूल से,
इस मादक-मादक वेला में महक रहे हैं फूल से,
दृष्टि अक भरती अतीत की एक-एक तस्वीर को,
जाने-अनजाने आ जाती हसी बिलखती पीर को,
वैरागी सपना घर लौटा राजकुवर के वेश में,
सिवा एक के, कोई मेरा रह न गया परदेश में,

हठ के सजग खुमार में,
मुखर मौन की धार में,
डूब-डूब कर कोई उतराता होगा।

मैं उस पार खडा करुणा के, देह पडी इस पार है,
विरह कठोर आज का जितना, उतना ही सुकुमार है,
कसक बसा दी गई गुलाबो में जाने किस हाथ से,
बढती जाती खुशी आज के सूनेपन के साथ से,
चूम-चूम लेता हू दर्पण, झर पडती मुस्कान है,
एक अनूठे पागलपन से हुई नई पहचान है,

सुधियो के व्यवहार से,
फूलो-वाले वार से,
बात-बात मे कोई झुझलाता होगा।

आसू है वह कौन कि जिसकी सुन ली गई पुकार है,
हिचकी ऐसी कौन कि जिसके पीछे नही कतार है,
मधु ने वाह गही क्या जाने किस सुकुमारी आह की,
रवि ने कर दी लाल माग किस सूरजमुखी कराह की,
उत्तर मिल जायेंगे मुझको उस क्षण अपने-आप ही,
जब आभास नही, सम्मुख होगा खुद खडा मिलाप ही,

कोई हसमुख मान से,
चुम्बन के परिधान से,
, भरे दृग सहलाता होगा।

लौट सुहागिन श्यामा आई

रूप के मन्दिर मदिर अनेक,
न तुझ सा किन्तु सृष्टि मे एक,
छले जा, छले जा, खूब छले जा
छोड न देना टेक,
छले जा, छले जा, खूब छले जा।

नयन अभी तक चले हाथ रख रवि-शशि के कन्धो पर,
तारों और प्रदीपो को आखो के अचल गह कर,
बनी पुतलिया आज बातिया, आसू जिनका सम्बल,
अमर तिमिर मर चुका इन्हें, रग-रग से झाकी हलचल,
गाव एक के बाद एक यदि पथ मे मिलते जायें,
दूरी पास लगे आती सी, पग गनि भर-भर लायें,

एक नगर जग, एक नगर मग, एक क्षितिज भी नगरी,
अकुलाहट–वारुणि से भरती रहती आशा गगरी,
रहने दे बस पीठ, व्यर्थ है आखें इधर घुमाना,
पाहन डुबकी ले जल मे फिर मुश्किल ऊपर आना,
अभी दूर वह सागर की तह, तुझे जहा तक जाना,

चले जा, चले जा, और चले जा।
छोड न देना टेक,
छले जा, छले जा, खूब छले जा।

था मेरा विश्वास पहरुआ अब तक किसी शहर का,
और किसी का था निशीथ म केवल दिन मे घर का,
रही उषा-सन्ध्या, मेरी आशा दासी पनघट की,
कटी दुपहरी दूब छीलते दूर कही सरि–तट की,
कभी लजीली काना–फूसी, हा–ना पहली निशि की,
सुनी न देखी पुन सेज ने अभी अभी तक सिसकी,
लौट सुहागिन श्यामा आई आज वही फिर घर को,
क्यो कि कमा अब लिया बहुत दोनो ने जीवन भर को,
कुछ न बिगडता मेरा, यदि यो पवन बेरुखा फिरता,
उठे जहाँ से कदम, वही आगे बढ पीछे गिरता,
क्योकि बहुत सा स्वय दूसरे पल तन आगे तिरता,

चले जा, चले जा, और चले जा।
छोड न देना टेक,
छले जा, छले जा, खूब छले जा।

नींद नहीं आने की

नीर खूब बरसा है,
रोम-रोम तरसा है;
पीर नहीं जाने की,
नींद नहीं आने की।

एक मेघ शेष रह गया न आसमान में,
खिल गये हजार फूल सांवरे वितान में,
किन्तु और-और गात भीग रहा वात का
घूल रही बूंदों की झरर-झरर कान में,

आंख छलछलाती है,
और सूख जाती है;
पर न मुस्कुराने की।

नैन आज झपते ही खुलते अनजान मे,
लगता है रात गई, सो रहा विहान मे,
दृष्टि घूम जाती, भ्रम होता बरसात का
पात झरझराते है जब-जब सुनसान मे,

खीझ कसमसाती है,
चेतना लजाती है,
पर न मुह छिपाने की।

पानी मे डूबा सा माटी का गेह है,
लहरो मे सिहर – सिहर तिरती सी देह है,
सूख रहे प्राण जब कि अग – अग गीला सा
उडती सी जाती इन सासो की खेह है,

रोशनी न भाती है,
यह शिखा जलाती है,
पर न दम बुझाने की।

बह बह जाते हैं ये लोचन

रात अघेरी, मैं बैठा हू सूने-सूने द्वार मे
कारे-कारे मेघ गरजते, भीग रहा बौछार मे

बू दी की डुलियो पर चढ कर अनगिन सुघिया आ
कुछ तो इनमें बहुत पुरानी औ' कुछ बिलकुल ही
एक हवा का झोका तन के सौ वातायन खं
खोया-खोया ध्यान अचानक चौंक-चौंक कर डो

बनती-मिटती विद्युत रेखा नभ पर बिखरी धार मे
बह-बह जाते हैं य लोचन गलियारे की धार मे।

खुल-खुल जाते ओठ, उसासो ने घेरा यह प्राण है,
दुबका-दुबका कण्ठ कि जैसे एक न आता गान है,
जम से गये कपोलो पर कर, सोये-सोये पाव हैं,
देखे-अनदेखे, मन को मिल रहे अनेको गाव हैं,

आज न आसू शामिल होते पानी के त्यौहार मे।
छिपके-छिपके फिरते अपने पाहुन के आगार मे।

भीग गई अन्तर की सिजिया नीद न आये पीर को,
चुभ-चुभ जाती जब शीतलता कस-कस लेती चीर को,
कोने मे हिल रही शिखा का अलसाया सा गात है,
खाली-खाली दीप कह रहा पास आ गया प्रात है,

हलकापन आता जाता है बरसाती झकार मे।
उगली मार-मार देता कोई कलरव के तार मे।

निशि में न पढ़ाना कीर

छुम-छम-छम बरसे नीर, न तुम आना।
कितनी भी कसके पीर, न तुम आना।

बूंदों पर गड़ जाती होंगी अँखियां,
कुछ खिंची-खिंची सी सरसिज की पखियां,
रोमावलियां लहरा जाती होंगी
रो-रो देती होगी हठ की सखियां,

बौछार ओठ बिन छुपे न अब माने,
मुड़ना, गड़ उड़ता चीर, न अकुलाना।
छुम-छम-छम बरसे नीर, न तुम आना।
कितनी भी कसके पीर, न तुम आना।

कुछ देर बाद बादल उड जायेंगे,
देखा जायेगा जब फिर आयेंगे,
पर अनिल और रस मे सन जायेगी
सासो के पग कैसे चल पायेंगे,

सोया होगा दीपक, न मचला से–
लखना मेरी तस्वीर, मान जाना।
छम–छम–छम बरसे नीर, न तुम आना।
कितनी भी कसके पीर, न तुम आना।

अब खो लेता हू मैं अपनेपन मे,
मन लगता तब तक रहता इस तन मे,
जी चाह रहा पर आज खूब तडपू
उलझा–उलझा लोचन हर जलकन में,

मेरे सुख–दुख का ध्यान अगर आये,
निशि मे न पढाना कीर, तरस खाना।
छम–छम–छम बरसे नीर, न तुम आना।
कितनी भी कसके पीर, न तुम आना।

शेष अभी तस्वीर

यह न मुझे था ज्ञात तुम्हारी अजलि सरल अमीर।
देवि, दान देकर भी लौटा लेती है वेपीर।

लाल-लाल था आनन मेरा, उस पर झलका स्वेद था,
मैं समझा घट दिया इसीसे तुमने, लेकिन भेद था;
चुभ पग तल मे शूल तुम्हारे तुम्हें किये हैरान था,
पूजन-घट रखने को मिलता कहीं न समुचित स्थान था;
मन्दिर की छाया पर जिसका एक मात्र अधिकार है,
प्रति दिन नीर-कलश रखना उस प्रस्तर पर बेकार हैं;

एक तीर फेका सो फेका अब न छुओ तूणीर।
कांच हो गया टुकडे-टुकड़े, शेप अभी तस्वीर।

राहगीर की हसी उडाना कौन बडी सी बात हैं,
अर्ध-रात्रि मे खिलने वाला यह अद्भुत जलजात है,
पैर सो गये बैठे–बैठे, हिलना भी दुश्वार है,
अपने ही तन पर न रह गया सा मुझको अधिकार है,
कर उठने के लिये भूमि पर खूब लगाते जोर हैं,
शक्ति साथ दे पा न रही, दृग फिरते चारो ओर हैं,

तुम न सहारा दो तो क्या, वह आया दौड समीर।
पकडा दी लो दूर लटकती बरगद की जजीर।

सुमुखि, सभालो अचल अपना, अब इसका क्या काम है,
अब न विधाता पहले जैसा किंचित मेरे बाम है,
दूर क्षितिज से उडता आता श्यामल पट इस ओर है,
उस के पीछे एक और भी स्वर्णिम-स्वर्णिम छोर है,
अब उन आने वालो को इस दर्पण की परवाह है,
जो कि तुम्हारे अट्ठहास से पूर्ण हो गया स्याह है,

दमक उठा देखते-देखते मेरा असित शरीर।
खीच उठा सा मुझको कोई झिलमिल-झिलमिल चीर।

पथ ने मेरी काया घेरी

पथ की जगह एक तेरी तस्वीर मुझे दिखलाती है।
इसीलिये तो इन कदमो की गति बढ़ती जाती है।

साथ नही है कोई मेरे
जो कि छूट जाने का डर हो,
पास नहीं है कुछ भी ऐसा
गिर जाये उदास अन्तर हो,
छाह नही है इन राहो में
जो कि थकन यो-ही आ जाये,
पनघट यहा कहा मिलते हैं
जो कि प्यास यो-ही लग आये,

दर्पण लेती, फिर रख देती, फिर तू उसे उठाती है।
पथ की जगह एक तेरी तस्वीर मुझे दिखलाती है।
इसीलिये तो इन क़दमो की गति बढ़ती जाती है।

कैसी तेरी पीर

आज हो रहा क्यों तू अन्तर, इतना हाय अधीर !
कैसी तेरी पीर !

जल का केवल रूप बदल सकती है रवि की ज्वाला,
आग सजे तूफ़ान सुखा सकते बस तल मतवाला,
पर उठने की शक्ति उसे इन दोनों से मिलती है,
एक दिवस मुरझाई धरती हसती है, खिलती है,

प्यास प्यास रट रहा आज क्यों मेरे बहते नीर !
कैसे तेरी पीर !

जिन नयनों के एक सृजन को कह देता तू सपना,
उन्हीं दृगों का एक सृजन फिर नाहक़ कहता अपना,
दुख-सुख का क्रम चलता आया औ' चलता जायेगा,
पर आज का दिन तो कल का दिन नाचे-गायेगा,

समय कहा है मुडकर देखू
कितनी दूर आ गया घर से,
जब न लौट कर मुझको आना
मेल करू क्यो डगर - डगर से,
मिलते गाव पथ मे लेकिन
एक ओर को रह जाते हैं,
अपनी मजिल तक जाने के
मार्ग सभी मुझको आते हैं,

कीर पढाती, कुछ-कुछ गाती, औ' फिर बोल न पाती है।
पथ की जगह एक तेरी तस्वीर मुझे दिखलाती है।
इसीलिये तो इन कदमो की गति बढती ही जाती है।

भूल गया मैं सब कुछ जब से
तेरी पीडा पहचानी है,
मस्तक पर ये झलकी बूदें
तेरी आखो का पानी है,
रुकने का न बहाना कोई
राह पडी है सूनी मेरी,
पथ ने मेरी काया घेरी
मैंने पथ की काया घेरी,

तरल हथेली, चूम नवेली, नभ पर आंख लगाती है।
पथ की जगह एक तेरी तस्वीर मुझे दिखलाती है।
इसीलिये तो इन कदमो की गति बढती ही जाती है।

कैसी तेरी पीर

आज हो रहा क्यों तू अन्तर, इतना हाय अधीर !
कैसी तेरी पीर !

जल का केवल रूप बदल सकती है रवि की ज्वाला,
आग सजे तूफ़ान सुखा सकते बस तन मतवाला;
पर उठने की शक्ति उसे इन दोनो से मिलती है,
एक दिवस मुरझाई धरती हसती है, खिलती हैं;

प्यास प्यास रट रहा आज क्यो मेरे बहते नीर !
कैसे तेरी पीर !

जिन नयनो के एक सृजन को कह देता तू सपना,
उन्हीं दृगों का एक सृजन फिर नाहक़ कहता अपना;
दुख–सुख का क्रम चलता आया औ' चलता जायेगा,
मूक आज का दिन तो कल का दिन नाचे–गायेगा;

समय कहा है मुड़कर देखू
कितनी दूर आ गया घर से,
जब न लौट कर मुझको आना
मेल करू क्यो डगर - डगर से,
मिलते गाव पथ मे लेकिन
एक ओर को रह जाते हैं,
अपनी मंजिल तक जाने के
मार्ग सभी मुझको आते है,

कीर पढाती, कुछ-कुछ गाती, औ' फिर बोल न पाती है।
पथ की जगह एक तेरी तस्वीर मुझे दिखलाती है।
इसीलिये तो इन कदमो की गति बढती ही जाती है।

भूल गया मैं सब कुछ जब से
तेरी पीडा पहचानी है,
मस्तक पर ये झलकी बूदे
तेरी आखो का पानी है,
रुकने का न बहाना कोई
राह पडी है सूनी मेरी,
पथ ने मेरी काया घेरी
मैंने पथ की काया घेरी,

तरल हृथेली, चूम नवेली, नभ पर आंख लगाती है।
पथ की जगह एक तेरी तस्वीर मुझे दिखलाती है।
इसीलिये तो इन कदमो की गति बढती ही जाती है।

कैसी तेरी पीर

आज हो रहा क्यों तू अन्तर, इतना हाय अधीर !
कैसी तेरी पीर !

जल का केवल रूप बदल सकती है रवि की ज्वाला,
आग सजे तूफान सुखा, सकते बस तन मतवाला;
पर उठने की शक्ति उसे इन दोनों से मिलती है,
एक दिवस मुरझाई धरती हसती है, खिलती है;

प्यास प्यास रट रहा आज क्यों मेरे बहुसे नीर !
कैसे तेरी पीर !

जिन नयनों के एक सृजन को कह देता तू सपना,
उन्हीं दृगों का एक सृजन फिर नाहक कहता अपना,
दुख-सुख का क्रम चलता आया औ' चलता जायेगा,
मूक आज का दिन तो कल का दिन नाचे-गायेगा;

टूटा तारा

टूटा तारा !

आज अवनि के आकर्षण से कहो न अम्बर हारा !
आसमान की मंजिल धरती पर कब से रहती है,
आसमान का विरह धूल भी युग-युग से सहती है,
कहीं पतन – उत्थान, डूबना – तिरना कहलाता है,
कहीं मृत्यु पर रोना, हंसना कहीं-कहीं आता है,
मधु से ज्यादा मीठा लगता कभी-कभी जल खारा !

टूटा तारा !

छू लेते क्षिति नभ से इतने लम्बे कर रवि-शशि के,
रुके वहा फिर तिल सा विरही तारा बल पर किसके,
विरह-मिलन की ज्वाला से शृङ्गार किये वह आया,
अरे, बीच मे ही पर किसने उनको हाय छिपाया,
छिपा राख मे देने से बुझता न और अगारा!
टूटा तारा!

बोलो कब आकाश भूमि का मारुत भी छू पाया,
तन-मन की खो जलन, हार ठण्डा हो नीचे आया,
किन्तु गगन का तो हर प्राणी धरा चूम कर माना,
रूप, रग-आकृति सब बदले पर न लौटना जाना,
वह देखो, रेखा सा निकला जला अनिल की कारा।
टूटा तारा!

आदमी को आदमी आंसू बनाता है

गम गलत करना अगर चाहो पियो श्रम को,
ये ढुलकते जाम, कब तक काम आयेंगे !

दर्द का सगीत से अनमोल नाता है,
दर्द को सगीत के घर चैन आता है,
मीड आसू की तरफ जब देख देती है
दर्द जाने किस जहा मे डूब जाता है,

पर दुलारे प्राण-प्यारे साथियो ! सोचो,
ये खनकते जाम, कब तक गुनगुनायेंगे !

पीर ने झुलसा दिये सावन सपन-वाले,
चेतना की देह भर मे पड गये छाले,
माख मे तस्वीर कोई भी नही ऐसी
हो न जिसकी चूनरी पर दाग सौ काले,

पर अरे निर्दोष – निश्छल क़ैदियो ! बोलो,
ये छलकते जाम, कब तक लौ बुझायेंगे ?

हर तरह का पाप गंगाजल नसाता है,
पी सुधा को आदमी अमरत्व पाता है,
हर तरह की चोट मदिरा खींच लेती है
आदमी को आदमी आंसू बनाता है,

पर पसीने में छिपी है मुक्ति इन्सानो !
ये उबलते जाम, क्या बन्धन जलायेंगे ?

छोड मैखाने चलो, बन्जर बुलाते है,
तोड पैमाने चलो, खंडहर बुलाते हैं,
आज साकी की नजर रंग–रेलिया छोडो
दौड अनजाने चलो रहबर बुलाते हैं,

खुद चलो, आवाज़ भी दो और लोगों को,
ये फिसलते जाम, क्या राहें दिखायें !

नाम न लो आराम का

कल फुलसिजिया पर सो लेना, आज समय है काम का।
नाम न लो आराम का।
अए मजदूरो !

मुक्ति मिली तो जकड न जाना आलस की जंजीर से,
स्वप्न करो साकार, न मन को बहलाओ तस्वीर से,
शासन अपना, सत्ता अपनी, हर पल-छिन स्वाधीन हैं,
कहने वाला अभी न कोई, भारत का श्रम दीन हैं,

कल पाओगे सुधा आज यदि नाम न लोगे जाम का।
वक्त नहीं आराम का।
अए मजदूरो !

सृजन करने को हम मजबूर हैं

अरुणोदय के साथ धरा पर उतरे हम मजदूर हैं।
सृजन हमारा काम, सृजन करने को हम मजबूर हैं।

सपनो को हम सत्य बाटते आये हैं हर प्रात मे,
इन्द्रधनुप पर निर्माणो के बाण चढाये रात मे,
नश्वरता ने जब-जब छेडा, रूप, जिन्दगी-प्यार को,
हमने जी भर सुधा पिलाई, भर-भर कर जलजात मे,

ताजमहल की शपथ न फिर भी हम किंचित मगरूर हैं।
सृजन हमारा काम, सृजन करने को हम मजबूर हैं।

देकर क्या पाया है, इससे मूल्य न श्रम का आकना,
बाहर से ज्यादा मीठा होता है भीतर झाकना,
अपनी भूख-प्यास से बढकर जन्म-भूमि का मान है,
हम नगे अच्छे हैं जो मा के तन पर परिधान है,

रहो नगर मे, किन्तु बिताओ जीवन सेवा-ग्राम का।
वक्त नही आराम का।
अए मजदूरो !

माटी सोना बन जाती है श्रम-सीकर के स्नान से,
बात सुनी इस कान निकल जाये न कही उस कान से,
धर्म हमारा-कर्म, जाति-मजदूर, प्रकृति घर-द्वार है,
जो कर्तव्य-निष्ठ है उसका सेवक हर अधिकार है,

घर बैठे पावे श्रम-जीवी पुण्य कि चारो-धाम का।
वक्त नही आराम का।
अए मजदूरो !

सृजन करने को हम मजबूर हैं

अरुणोदय के साथ धरा पर उतरे हम मजदूर हैं।
सृजन हमारा काम, सृजन करने को हम मजबूर हैं।

सपनों को हम सत्य बाटते आये हैं हर प्रात में,
इन्द्रधनुष पर निर्माणों के बाण चढ़ाये रात मे,
नश्वरता ने जब-जब छेड़ा, रूप, जिन्दगी-प्यार को,
हमने जी भर सुधा पिलाई, भर-भर कर जलजात मे,

ताजमहल की शपथ न फिर भी हम किंचित मगरूर हैं।
सृजन हमारा काम, सृजन करने को हम मजबूर हैं।

अक्सर ऐसा हुआ जिन्दगी हुई हमें दुश्वार है,
अक्सर ऐसा हुआ कि जीने का न मिला अधिकार है,
सर्पों ने सौ बार डसा है मुक्त पवन—सी चाल को
अक्सर इन निश्छल हाथो पर नाच उठी तलवार है,

पर साहस के गीत हमारे दुनिया मे मशहूर है।
सृजन हमारा काम, सृजन करने को हम मजबूर है।

हम जन–जन के लिये फूल से कोमल, मृदु नवनीत से,
हम हर युग के लिये प्रीति से पावन, सावन गीत से,
वन, उपवन, खँडहर या बन्जर हमको सबमे स्नेह है
जड हो या चेतन हो सबको हम उपकारी मीत से,

खुद के खातिर हम निर्मोही, निर्मम क्रूर जरूर हैं।
सृजन हमारा काम, सृजन करने को हम मजबूर हैं।

हमने नहरें खोदी लाखो पर तडपे हैं प्यास से,
शाल—दुशाले रचे मगर तन ढके सदा आकाश से,
हमने मन्दिर गढे, गालिया प्रतिमाओ ने दी हमें
हमको छलना मिली हमेशा समझदार विश्वास से,

सर्जन करते रहे हाथ, सौ कष्ट हमें मन्जूर है।
सृजन हमारा काम, सृजन करने को हम मजबूर हैं।

सावन गाये ब्याही बेटी

तीन लोक से न्यारी – प्यारी श्रमिक नगरिया रे !
अरे यह श्रमिक नगरिया रे !

पनघट इसके सूरज जैसे
रजघट जैसे चाद – सितारे,
बहली फिरती सी चल खाली
मृदुल चेतना सांझ – सकारे,

रिमझिम – रिमझिम बरखा जैसी हसे गुजरिया रे !
अरे यह श्रमिक नगरिया रे !

चूनर, अगिया, माहुर, बिंदिया
बिछिया–कगन चांदी–वाले,
मजदूरिन के तन पर सोहैं
चले मयूरी घुंघटा डाले,

पहने फिरती पैंजनियां हर एक -डगरिया रे !
अरे यह श्रमिक नगरिया रे !

द्वार – द्वार मृग-छौने डोलें
तन नगे, नैना कजरारे,
कटि मे करधनिया, हाथो मे
गुरिया लाल, बैजनी-कारे,

युग-युग फूले-फले उषा की नई उमरिया रे !
अरे यह श्रमिक नगरिया रे !

कोई गाये आल्हा, रसिया,
बिरहा-कजरी कोई गाये,
सावन गाये व्याही बेटी
झूला आसमान छू आये,

श्रम के घर मे सर्जन जन्मा, खनके थरिया रे !
अरे यह श्रमिक नगरिया रे !

कहीं श्रम हो जाये बागी

भूख की कन्या कुआरी रे,
गाठ मे बस लाचारी रे,
दुखी श्रम का बाबुल, अनमनी
गरीबी की महतारी रे!

पडोसी महलो को देखो, अटपटी बातें करते हैं,
जडाऊ कूपो को देखो, द्वार घट फूटे धरते हैं,
रूढियो की बुढियो के हाथ, ठोढियो पर आ जाते हैं,
छोकरे वैभव के बेरोक मनचले गाने गाते हैं,

कर्ज मे हल्दी ले तो लें,
व्याज मे इज्जत कैसे दें,
नही है यह रजवाडी बाग
गरीबो की फुलवारी रे।

सृजन के घर को प्यार अपार भूख से, उसकी आखो से,
खेलता घन्टो बैठा रोज़ पोडसी अरणिम पाखो से,
न्याय को बेटे का यह कर्म न फूटी आखो भाता है,
घरैतिन समता को दिन-रात खूब गालिया सुनाता है,

नये हाथो को शाबासी,
नये युग के हम अभिलाषी,
जवानी के घर कर ले काम
चेतना की पनिहारी रे।

न समता को घर-बाहर चैन, पुत्र का स्नेह सताता है,
गोद का फूल अनमना देख दृगों मे जल भर आता है,
गरीबी दिन भर करती काम, रात को नीद न आती है,
देख बेटी के उभरे अग कसमसा कर रह जाती है,

कहीं श्रम हो जाये बागी,
बात पूरी हो मुह मागी,
आदमी का पानी मर गया
पहन घर बैठे सारी रे!

चू गया आंसू सुरा में आंख से

दृष्टि मे चन्दा, करो मे जाम है।
गीत सासो मे, महकता घाम है।
चाहता हू मैं कि बहले मन,
भीग जाते हैं मगर लोचन!

जाम रह कर भी न रहता हाथ मे,
चाद रह कर भी न रहता साथ मे,

जब अजाने झूम कर यो-ही,
देख लेता है मुझे दरपन।
चाहता हू मैं कि बहले मन,
भीग जाते हैं मगर लोचन!

चू गया आसू सुरा मे आख से,
भर गया ज्यो फूल महकी शाख से,

बढ गई सी और कुछ पीडा,
बढ गया सा और कुछ क्रन्दन।
चाहता हू मैं कि बहले मन,
भीग जाते है मगर लोचन!

दब गई पलकें अजाने भार से,
बध गये से ओठ कोमल तार से,

दर्द पीता जा रहा मदिरा,
और होता जा रहा चेतन!
चाहता हू मैं कि बहले मन,
भीग जाते हैं मगर लोचन!

सांस का हर तार वीणा बन गया है

हो गया क्या आज मेरी चेतना को !

तोड़ तन से मोह, मन्दिर से लगाया,
बोझ रज का फेंक, प्रस्तर का उठाया,

भर लिया है अंक में अब कल्पना को !
हो गया क्या आज मेरी चेतना को !

प्राण का स्नेहिल दिया, पुन का बनाया,
मूर्ति के निर्जीव चरणों पर चढ़ाया,

दोष देना व्यर्थ है मृदु वेदना को।
हो गया क्या आज मेरी चेतना को!

सास का हर नार वीणा बन गया है,
राग जिस पर डोलता बिल्कुल नया है,

मोह लेगा जो पुरानी अर्चना को।
हो गया क्या आज मेरी चेतना को!

कान्ति भर दे जो सहज अन्तकरण मे,
सत्य को जो डाल दे लाकर शरण मे,

सिर झुका सौ–बार ऐसी वञ्चना को।
हो गया क्या आज मेरी चेतना को!

फूलों से निकलेंगे कांटे

एक शूल और चुभा पाव मे।

मजिल है पास, बहुत दूर नही,
तन भी तो बहुत चूर-चूर नही,
फूलो से निकलेंगे काटे, उस गाव मे।
एक शूल और चुभा पाव मे।

रुकने से कसकन बढ जायेगी,
खोई गति हाथ नही आयेगी,

चले चलो बादल की चलती, इस छाव मे।
एक शूल और चुभा पाव मे।

थोडा पथ चलना, फिर पानी है,
नदी खूब जानी-पहचानी है,
हारा सब जीतोगे, अन्तिम इस दाव मे।
एक शूल और चुभा पाव मे।

स्वर ऐसा न कभी सोता था

प्राण यहा भी अकुलाता है!

सरिता के उस पार किनारे,
एक दीप बैठा मन-मारे,
गेंदे-वाली माल गले की
टूट गिरी ले नैन निहारे,

लहरों मे लर डोल रही है,
जल न बहा ले जा पाता है!
प्राण यहा भी अकुलाता है!

वह दुकूल गीला-चमकीला,
वेला के अनुरूप छबीला,
कसमस करता मझधारा मे
बहुत देर से चाद हठीला,

चल पाता आगे न डूबता,
एक जगह ही उतराता है !
प्राण यहा भी अकुलाता है !

स्वर ऐसा न कभी सोता था,
सुध-बुध तो न कभी खोता था,
तन को धीरे से छूते ही
पलकें खोल सजग होता था,

जब–जब आज इसे झकझोरू,
कुनुन-मुनुन कर रह जाता है !
प्राण यहा भी अकुलाता है !

महके फूल रातरानी के

महके फूल रातरानी के।

आज पास होती तू मेरे
भर देता अंजलि सुवास से,
मुखरित कर देती सूनापन
तू अलबेले मौन - हास से

इन आंखों म रस लहराता,
मेघ न होते इस पानी के।
महके फूल रातरानी के।

सांसों को सुगन्धि से पहले
बेचैनी ने घेर लिया है,
हाथों को सुमनों से पहले
इन पलकों ने काम दिया है,

कितने भोले-भाले पल ये,
करुणा के घर मेहमानी के।
महके फूल रातरानी के।

थोडी सी आहट मिलते ही
एक होश सा आ जाता है,
देख न ले यों रोता कोई
भय प्राणों पर छा जाता है,

दुनिया की नजरों में मेरे,
बीत गये दिन नादानी के।
महके फूल रातरानी के।

सेज बिछ गई हरसिंगार की

सेज बिछ गई हरसिंगार की।

आज कौन इस पर सोयेगा,
हर सपना यों ही रोयेगा,

चेतन है झंकार बहुत ही,
आज पीर के तार–तार की।
सेज बिछ गई हरसिंगार की।

आंसू सोयें तो सो जायें,
गोरी बाहों मे खो जायें,

इन हंसती किरणों के भय से,
या कि सुरा पी कर बयार की।
सेज बिछ गई हरसिंगार की।

इन पानी उतरे फूलों ने,
शबनम के उतरे झूलों ने,

फिर से कर दी तरल तूलिका,
निशि भर जागे चित्रकार की।
सेज बिछ गई हरसिंगार की।

रोम रोम में फूल खिले हैं

रुक जाना न पवन रुक जाना।

चीर किसी का लहराता है,
गीत बहुत मादक गाता है,
नैन, कंठ, घूमिल कपोल – कर
मेरे चूम-चूम जाता है,

रोम-रोम मे फूल खिले हैं,
पखुरियाँ न अभी बिखराना।
रुक जाना न पवन रुक जाना।

रूपवती यह सकुचाई है,
मुख पर अरुणाई आई है,
हरसिंगार कोमल अजलि मे
मृदु मन पर दुविधा छाई है,

छोर सभालूं या रहने दू,
पुष्प कठिन ऐसे फिर पाना।
रुक जाना न पवन रुक जाना।

वन–उपवन आगे पाओगे,
रस–सुवास मे सन जाओगे,
श्वास - श्वास तुम पर रीझेगी
आसव–घट सा छलकाओगे,

रुख न बदल देना तुम अपना,
गति चाहे कुछ और बढाना।
रुक जाना न पवन रुक जाना।

चेतना सोती नहीं अब रात में भी

कौन सी मदिरा पिलाई पीर ने !

आख मेरी हो गई इतनी रसीली,
बात मेरी हो गई इतनी नशीली,

पास जो आता, न जाना चाहता है,
ले लिया जग मोल एक फकीर ने !
कौन सी मदिरा पिलाई पीर ने !

देह दर्पण सी दमकने लग गई है,
सौ - दियो की ज्योति मन में जग गई है,

प्राण पर जो कालिमा बाकी बची थी,
पोछ ली कब, क्या पता, किस चीर ने !
कौन सी मदिरा पिलाई पीर ने !

मैं नशे में चूर होकर भी सजग हू,
आसुओं के साथ रह कर भी अलग हू,

चेतना सोती नही अब रात में भी,
कर दिया आजाद हर जजीर ने !
कौन सी मदिरा पिलाई पीर ने !

कौन कहां आंचल फैलाये

पंछी ने दृग मूंद लिये हैं।

कितने ऊंचे आसमान से,
मेघों के पुष्पक विमान से,

छोड़ दिया नादान करों ने,
और पंख भी बांध दिये हैं।
पंछी ने दृग मूंद लिये हैं।

इतनी चेतनता क्षण-क्षण में,
कब आई होगी जीवन में,

एक घूंट मे ही प्राणों ने,
अनगिन सूरज-चाद पिये हैं।
पछी ने दृग मूंद लिये हैं।

कौन कहा आचल फैलाये,
नीचे तो सागर लहराये,

तेज हवाओ के झोंको ने,
सारे सम्बल दूर किये हैं।
पछी ने दृग मूंद लिये हैं।

वह घड़ी भी याद आये

वह घड़ी भी याद आये।
मैं कुहू के कुञ्ज में, जब कण्ठ था तुझको लगाये।

नैन तेरे रस रहे थे,
स्निग्ध बेला की लरों से
देह मेरी कस रहे थे,

इन दृगों ने मोतियों से केश थे तेरे सजाये।
वह घड़ी भी याद आये।

ओठ गुम-सुम हो गये थे,
श्याम सिजिया पर तनिक-
सी देर को ये सो गये थे,

इन करो ने अश्रु अपने उन लटो से थे सुखाये।
वह घड़ी भी याद आये।

इन कपोलो पर, चिबुक पर,
बन गये थे चित्र अनगिन
माग से सिन्दूर लग कर,

जो कि तेरे नील अंचल ने, सवेरे थे मिटाये।
वह घडी भी याद आये।

चल शृङ्गार करूं मैं तेरा

भर आया क्यो नीर नयन मे !

मै समीप बैठा हू तेरे,
तुमको मेरी छाया घेरे,

मुक्त, मृदुल–शीतल समीर ने,
पीर कौन डाली तन–मन मे !
भर आया क्यो नीर नयन मे !

तू अपलक कुछ देख रही थी,
किसने तेरी दृष्टि गही थी,

अब न ठीक से मुख भी अपना,
दिखता होगा उस दर्पन में !
भर आया क्यों नीर नयन में !

आज रात क्या नींद न आई,
इस वेला में तू अलसाई,

चल शृंगार करूं मैं तेरा,
हरसिंगार झरते उपवन में !
भर आया क्यों नीर नयन में !

अंचल अपना करो न मैला

निहारो इस दर्पण मे।

गिराया है ऊंचे से
वा ने बहुत जोर से,
चूर तो नही हुआ पर
गया मैं पोर-पोर से,

दो अपशकुन मत करो,
ुवह इस मधुरिम् क्षण मे।
निहारो इस दर्पण मे।

अचल अपना करो न मैला
मुझ पर धूल चढी रहने दो,
एक और झोंका आने तक
करुणा मे यो - ही बहने दो,

रूप तुम्हारा रख न सका है,
मुझको अपने सरक्षण मे।
मुख न निहारो इस दर्पण मे।

यदि हाथो ने उठा लिया है
तो मुझको उस ओर डाल दो,
जहा न होकर निकले कोई
उस कोने मे आज ढाल दो,

रूपसि, अब मैं चुभ सकता हू,
किसी समय भी, किसी चरण मे।
मुख न निहारो इस दर्पण मे।

'फिन्मका' व सौजय म

मिले दिन जागरण वाले

कहा तूफान आय हैं अभी वे सतरण-वाले ।
किनारे घेर बैठे हैं भवर के आचरण-वाले ।

किसी के सामने वे क्यों झुकें, क्यों हाथ फैलायें,
कि सब के सब मिले हो लोभ जिनको सवरण-वाले ।

उसे क्यो वक्त का मारा हुआ इन्सा कहे कोई,
जिसे रातें मिली स्वप्निल, मिले दिन जागरण-वाले ।

दुखी हैं वे, हकीकत का अभी से राज पा बैठे,
सुखी वे आज भी हैं, सत्य जिनके आवरण-वाले ।

किसी की भी सरल बातें उन्हे क्या जीत पायेंगी,
जनम से ही मिले हो कान जिनको आभरण–वाले।

कही मंजिल न पीछे छोड आये हो कदम मेरे,
खडे हैं रास्ता रोके प्रहर ये सस्मरण–वाले।

तुम्हे क्यो सस्मरण–वाले महोत्सव मे बुला बैठूं,
तुम्हारी याद के क़ाबिल प्रहर है विस्मरण–वाले।

उमर 'सिन्दूर' की खामोशियो मे गर्क हो जाती,
कदम आगे न होते छोड कर पथ अनुसरण–वाले।

आदमी डूबा हुआ जलजात है

जिन्दगी मांगी हुई सौग़ात है।
आदमी डूबा हुआ जलजात है।

धूप, आंसू, स्वेद, शबनम-चांदनी,
जिन्दगी बरसात ही बरसात है।

मंजिलें भी पन्थ से कहते मिलीं,
जीत ही सब से क़रारी मात है।

हाय रे उन्मुक्त उर की बेबसी,
किस कदर खामोश झंझावात है।

लाज ने वाचाल नैनों से कहा,
मौन से प्यारी लगे वह बात है।

मौन चुम्बन से मुखर हो कह गया,
स्वप्न की प्यारी लगे वह रात है।

कानपुर का हाल मुझसे पूछिये,
आजकल 'सिन्दूर' ही विख्यात है।

उद्‌गम में डूब जाते

हम तुम मे डूब जाते,
तुम हम मे डूब जाते।
सागर जहान भर के,
शबनम में डूब जाते।

कुछ दूसरी न होती
सयोग की कहानी,
आसू से बच निकलते
संगम मे डूब जाते।

हम जो है वो न होते
आसू जो ये न होते,
सागर की उम्र पा—के
उद्‌गम मे डूब जाते।

आसू जो अर्चना से
ऊबे तो भय उठा ली,
गहरे ही डूबना था
सरगम मे डूब जाते।

'सिन्दूर' रूढियो से
रिश्ता न तोड देते,
इस श्रम मे डूब जाते
उस भ्रम मे डूब जाते।

आइना चोट कर गया होता

सिन्धु तो पार कर गया होता।
शबनमी आख तर गया होता।

तू भी मुझ सा बुझा-बुझा दिखता,
तेरा पानी न मर गया होता।

आख पर चढ गया जमाने की,
काश दिल मे उतर गया होता।

ताज सर पर सजा गया कोई,
काश कदमो पे धर गया होता ।

किस कदर होश मे है बेहोशी,
आइना चोट कर गया होता ।

उफ् रे 'सिन्दूर' बेखुदी तेरी,
माग अपनी ही भर गया होता ।

हम अजाने रहे

हम अजाने रहे नाम होते हुये।
एक तुम्हारे रहे आम होते हुये।

पास उनके पहुचना न मुमकिन हुआ,
हाथ मे एक पैग़ाम होते हुये।

छोड दिल ज़िन्दगी का न हम जा सके,
मौत के घर बहुत काम होते हुये।

बन्दगी हर डगर, हर नज़र से मिली,
एक ज़माने से बदनाम होते हुये।

यों तो बिकने को हर चीज़ बिकती रही,
कुछ खरीदा नहीं दाम होते हुये।

महक ने करवट ली तो कली ने
चटक के ये बागबा से पूछा,
चढी जवानी को कौन था जो
उतार देकर चला गया है।

मैं मौत की गोद मे पडा था
वो बेखुदी क्या ही बेखुदी थी,
किसी ने दी जिन्दगी मुझे या
खुमार देकर चला गया है।

ये काफिला रहरवो का है
जो कि मजिलें हर डगर को देगा,
वो क़ाफिला रहबरो का था जो
गुबार देकर चला गया है।

जो आज 'सिन्दूर' पर है गुजरी
कभी किसी पर न गुज़रे ऐसी,
अभी ही साहिल के धोखे तूफा
कगार देकर चला गया है।

ये चांद तारे अभी नये हैं

ये रात गुज़रेगी हम से कैसे,
ये चांद-तारे अभी नये हैं।
किसे कहें दुश्मनों का दुश्मन,
सभी हमारे अभी नये हैं।

एक अरसे से पीते पिलाते रहे,
प्यास हर बार अन्जाम होते हुये।

इस जहा को न हम मैकदा कह सके,
आज हर हाथ मे जाम होते हुये।

सामने दौर पर दौर चलते रहे,
हम रहे दूर खैयाम होते हुये।

हर जगह पे तुम्हें वाह-वाही मिली,
बेवफाई का इल्जाम होते हुये।

आज तक तो कभी हमने देखा नही,
आखिरी दाव नाकाम होते हुये।

दिन ही कुछ ऐसे 'सिन्दूर' अब आ गये,
आह भरते है आराम होते हुये।

पुकार देकर चला गया है

कोई वयाबा मे आज मुझको,
पुकार देकर चला गया है।
खिजा जवा हो गई है, ऐसी
बहार देकर चला गया है।

शुरू से लेकर के आज तक की
किसी ने पूछी कहानी मेरी,
न एक आसू बनाया मोती
शुमार देकर चला गया है।

एक अरसे से पीते पिलाते रहे,
प्यास हर बार अन्जाम होते हुये।

इस जहा को न हम मैकदा कह सके,
आज हर हाथ मे जाम होते हुये।

सामने दौर पर दौर चलते रहे,
हम रहे दूर खैयाम होते हुये।

हर जगह पे तुम्हें वाह-वाही मिली,
बेवफाई का इल्जाम होते हुये।

आज तक तो कभी हमने देखा नही,
आखिरी दाव नाकाम होते हुये।

दिन ही कुछ ऐसे 'सिन्दूर' अब आ गये,
आह भरते है आराम होते हुये।

पुकार देकर चला गया है

कोई बयाबा मे आज मुझको,
पुकार देकर चला गया है।
खिजा जवा हो गई है, ऐसी
बहार देकर चला गया है।

शुरू से लेकर-के आज तक की
किसी ने पूछी कहानी मेरी,
न एक आसू बनाया मोती
शुमार देकर चला गया है।

महक ने करवट ली तो कली ने
चटक के ये बाग़बा से पूछा,
चढी जवानी को कौन था जो
उतार देकर चला गया है।

मैं मौत की गोद मे पडा था
वो बेखुदी क्या ही बेखुदी थी,
किसी ने दी जिन्दगी मुझे या
खुमार देकर चला गया है।

ये काफिला रहरवो का है
जो कि मजिलें हर डगर को देगा,
वो क़ाफिला रहबरो का था जो
गुबार देकर चला गया है।

जो आज 'सिन्दूर' पर है गुजरी
कभी किसी पर न गुज़रे ऐसी,
अभी ही साहिल के धोखे तूफा
कगार देकर चला गया है।

ये चांद तारे अभी नये हैं

ये रात गुज़रेगी हम से कैसे,
ये चाद-तारे अभी नये हैं।
किसे कहें दुश्मनों का दुश्मन,
सभी हमारे अभी नये हैं।

हमें न दरकार है बुतो से
हमें सरोकार क्या सुबू मे,
वो मन्दिरों मैकदो मे जायें
जो गम के मारे अभी नये हैं।

जो साथ देने पे ही तुले है
जो दर्द लेने पे ही तुले है,
उन्हें कहूँ क्या सिवाय इसके
कि वो सहारे अभी नये है।

मे काफिले हो गये जो बागी
तो क्या हुआ ऐसा रहनुमाओ,
उठो नये काफिले बनाओ
हजारो नारे अभी नये हैं।

जो जाम-वाली नजर से देखा
सभी किनारे लगे पुराने,
जो देखा तूफा की आख से तो
सभी किनारे अभी नये है।

चलो न 'सिन्दूर' सब के आगे
चलो न 'सिन्दूर' सब के पीछे,
उमर तुम्हारी अभी नयी है
कदम तुम्हारे अभी नये हैं।

बेरुखी पर शबाब रहने दे

आख को वेहिजाव रहने दे।
जाम मे कुछ शराब रहने दे।

नीद आ गोद मे सुला लूं तुझे,
आज की रात ख्वाब रहने दे।

मौत की सिम्त से नजर न हटा,
झिलमिलाता नकाव रहने दे।

मेल ऐसा न कर वफाओं से,
हर अदा लाजवाब रहने दे।

देख मत बेरुखी निगाहों से,
बेरुखी पर शबाब रहने दे।

रश्क 'सिन्दूर' से करे कोई,
बन्दगी का हिजाब रहने दे!

हो जायेगा प्रात

छोड गये जो गीत रूप! तुम जाते-जाते,
अधर हो गये मूक यकायक गाते-गाते,
पलकें बन्द हुईं, लेकिन लय गूंज रही है
हो जायेगा प्रात, नींद के आते-आते।

•

आज रूप घुल-मिल जाने दो नयनों के परिवार में,
छवि को रौनक और मिलेगी आकर इस संसार में,
तुमको बतलाऊं मैं कैसे बढ जाती है मोहिनी
मदिरा आती जब कि काच के प्यालों के अधिकार में।

•

मुझको रोता जान सजन ! तू इतना घबराता है,
क्या कम है जो मुझे तूने इस क्षण भी दिखलाया है,
सुन के दूर गा रहा कोई, शायद नदी किनारे
नीर बरस चुकने पर, नभ में इन्द्रधनुष आता है।

●

लहराने दो अलक अलकना लो-री लहराने दो,
अधर कभी, दृग कभी, कभी कर मेरा छू जाने दो,
पल पल मैं खोजता रहा क्यों इस रातकी अन्तिम को
श्वास-श्वास में हाला मादकता भर-भर पहुँचाने दो।

●

धूप में नीर बरसता है

रूप तुम्हारा कौन देखने को न तरसता है,
आ बैठी कण्ठ में सलोनी ! सरल सरसता है,
घूंघट कर से उठा बोल तुम जब कुछ देती हो
सच कहता हूं प्राण ! धूप में नीर बरसता है।

•

लाओ लिख दूं ऊपर तेरे चीर के,
हम दोनो दो नैना, एक शरीर के,
पलकें जिनकी, उठती-गिरती साथ
साथ-साथ ही बनते जो घट नीर

•

घूंघट अनजाने में तेरे बायें कर ने उठा लिया,
देख सामने मुझे दाहिने ने मीठा आघात किया,
पूर्ण प्रस्फुटित रवि का सम्बल ले, दर्पण इस ओर घुमा
प्यासी-प्यासी आंखों पर पट, चकाचौंध का बांध दिया।

•

श्वास ने मेरी छुआ ही था गुलाबी फूल,
खोल घूंघट रोष में, खुद की तुम्ही ने भूल,
दृग ठगे मेरे, कुसुम कर से गिरा अनजान
हो गई मालिन ! भरी डाली तुम्हारी धूल।

•

इन्द्रधनुष छिप जायेगा

वातायन की ओर न कर संकेत रूप शरमायेगा,
वह सतरंगी अंचल—वाला, फिर न वहां दिखलायेगा,
आसमान की ओर उठाने से अंगुली ऐसे साथी !
मञ्जुल-मञ्जुल, सुघर-सलोना इन्द्रधनुष छिप जायेगा।

•

घूंघट खोलो अब तो तुम, सुन्दरता झरने दो,
इन मेरे नयनों में छवि को अविरल भरने दो,
श्वास, बांसुरी के रन्ध्रों में जब खिल जायेंगी
मेरे उत्सुक हाथों से संगीत बिखरने दो।

•

आज चपलता ने फिर उसकी, यह रूठा मन मोह लिया,
मुझको प्यासा जान, दूर को कुछ उसने सकेत किया,
उल्टा रक्खा ताम्र-कलश था, तन-मन खीझ गया मेरा
ठोकर दी जो उसमें, ढब-ढब कक्ष नीर ने भिगो दिया।

•

सुन रक्खा था बहुत तुम्हारी अखियो के अभिनय का शोर,
रगमच तक मैं आ पहुचा, भीड एक भारी झकझोर,
देख न पाई किन्तु ठीक से उनकी सजधज भी अभिराम
गिर पलको की पडी यवनिका, खुलने से रेशम की डोर।

•

लोचन भरे तुम्हारे

बहुत छिपाया फिर भी तुमने देख लिया दृग-नीर को,
दोष दे उठा सहज चतुरता से मैं तेज़ समीर को,
लोचन भरे तुम्हारे, तुम भी बोलीं कर मे छोर ले
देख रही थी इकटक मैं, उस दूर टगी तस्वीर को।

•

आज रात को इस दीपक के साथ देर तक खेला,
नींद न आई, करता क्या मैं बैठा हुआ अकेला,
विस्मय से क्यों कभी देखती मुझे, कभी दीवारें
है परिणाम उसी का, यह छाया-चित्रों का मेला।

•

आज रात दृग भर-भर आये, करुणा ने काया घेरी,
ऐसा लगा कि भीगी पलकें पोंछ रही है तू मेरी,
किन्तु दृष्टि को जब न मिली तू, ऊपर को उठ सहज गई
सिर पर हाथ पडा था मेरा, उस पर थी चूनर तेरी!

•

भांति भांति का विष वैसे तो एक नहीं सौ बार पिया,
अब तक मेरी किसी श्वास ने मन उदास तक नहीं किया,
किन्तु अधर छूते ही तेरे एक अश्रु ने, आज अभी
मिजिया स उतार कर मुझको धरती पर है लिटा दिया।

•

था बहुत बेचैन मैं

था बहुत बेचैन मैं, अब और हो-लूँगा,
पर तुम्हें दुख-दर्द देने को न बोलूँगा,
दृष्टि से पहले, तुम्हें आँसू निहारेंगे
तुम खड़ी सम्मुख, मगर पलकें न खोलूँगा।

भर-भर आता नीर है,
ग, मेरा सजग शरीर है,
देख पा रहा सुन्दरी!
न्दा की तस्वीर है।

आज रात दृग भर-भर आये, करुणा ने काया घेरी,
ऐसा लगा कि भीगी पलकें पोछ रही है तू मेरी,
किन्तु दृष्टि को जब न मिली तू, ऊपर को उठ सहज गई
सिर पर हाथ पडा था मेरा, उस पर थी चूनर तेरी ।

•

भाति-भाति का विष वैसे तो एक नही सौ बार पिया,
अब तक मेरी किसी श्वास ने मन उदास तक नही किया,
किन्तु अधर छूते ही तेरे एक अश्रु ने, आज अभी
सिजिया से उतार कर मुझको धरती पर है लिटा दिया ।

•

था बहुत बेचैन मैं

था बहुत बेचैन मैं, अब और हो-लूंगा,
पर तुम्हें दुख-दर्द देने को न बोलूंगा,
दृष्टि से पहले, तुम्हें आंसू निहारेंगे
तुम खड़ी सम्मुख, मगर पलकें न खोलूंगा।

•

आज न जाने क्यों नयनों में भर-भर आता नीर है,
कांप कांप जाता किसलय सा, मेरा सजग शरीर है,
रूप तुम्हारा मैं न ठीक से देख पा रहा सुन्दरी !
बदल-बदल जाती लहरों में चन्दा की तस्वीर है।

सोचता था, मैं अभी तुमसे न बोलूंगा,
नीर से पूरी भरी पलकें न खोलूंगा,
पर विवश जब भेद खोले दे रहीं सांसें
आज तेरे सामने जी खोल रो लूंगा।

•

आज हाथ मेरे रह-रह अकुलाते हैं,
इन भीगी पलकों के पास न जाते हैं,
क्यों कि इन्हें है ज्ञात, कि इनके छूने से
और-और वे लोचन भर-भर आते हैं।

•

तू न छेड़ती मुझको

मान विहगिनि, जोर-जोर मे क्यो सिर पर गाती है,
टूट-टूट शृंखला सुनहले सपनो की जाती है,
तू न छेड़ती मुझको, अनुभव अगर तुझे भी होता
बिल्कुल सुबह-सुबह पर कितनी मृदुल नींद आती है।

•

पूछ न साथी ! समाचार क्या नूतन है,
रोम-रोम से झाक रही क्यो पुलकन है,
समझदार के लिये इशारा काफी है
कल तक था जो काच, आज वह दरपन है।

•

मत पूछो, क्यों इतनी मेरी मगन-मगन काया है,
तुम कह दोगे वही रोज की निंदिया की माया है,
और बताऊं भी तो क्यों, सपना होने को झूठा
पहली-पहली बार आज जो सुबह-सुबह आया है।

•

तुम क्यों मुझको छल कहते हो,
क्यों बेकार अनल कहते हो,
जो कि बुझाये प्यास तुम्हारी
तुम उसको मृग-जल कहते हो!

०

कुछ आघात किया मैंने

अब तो मेरी दृष्टि स्वयं मुझको ठगती है,
क्षण-क्षण एक नई सी कुछ शंका जगती है,
कुछ आघात किया मैंने, किस पर, न ज्ञात है
आंख-आंख अब मुझे घूरती सी लगती है।

•

अब तो मन असमञ्जस में पड़ जाता है,
जब-जब कोई आता पास दिखाता है,
पग कंप ही जाते हैं चलने से पहले
जब कि हाय अब कोई पास बुलाता है।

•

अब सूनापन जब मेरे घर मे भरता है
स्वाभिमान के तन का रोम-रोम जलता है,
झुक-झुक जाती चहल-पहल मे अखिया मेरी
देख इधर को जब कोई बातें करता है।

●

जब कोई मुख फेर सहज मे अब लेता है,
हर उमग की लहरी बन जाती रेता है,
एक कम्प सा डस जाता है, अभय प्राण को
जब कोई सकेत इधर अब कर देता है।

●

यों भीगेंगे नैन न ये

यो भीगेंगे नैन न ये, चोटो पर चोटें मारो,
मेरे पथ के रहे-सहे तुम सारे दीप उसारो,
इन पलको मे नीर देखने पर यदि आमादा हो
दोस्त, नुकीली हमदर्दी सीने के पार उतारो।

•

हर हृदय पर आज जिसकी छाप है,
दे रहा जिसका विरह सन्ताप है,
हर घड़ी जिसकी प्रतीक्षा हो रही
प्रीति, उस इन्सान की पद-चाप है।

•

देख रहे इस ओर सखे! क्यों डरते-डरते,
हाथ रुका सा क्यों मधु-प्याली भरते-भरते,
नैन व्यर्थ के लिये छलछला गये तुम्हारे
हो जाऊंगा अमर एक दिन मरते-मरते।

•

कितना गहरा है तू सागर! सचमुच मुझे न ज्ञात है,
रोज रोज ताना देने की पर इस में क्या बात है,
जब-जब डुबकी ले, मैं तेरी थाह लगाना चहता
तब-तब बनता स्नेह, समूचा यह माटी का गात है।

•

बाज़ारू तस्वीर है

मैं न कहूंगा दृष्टि तुम्हारी बाज़ारू तस्वीर है,
यदि तुमने कह दिया कि तेरी छिछली-छिछली पीर है,
लेकिन बात बता दूं तुमको जानी-बूझी एक मैं
गहरी से गहरी सरिता का उथला होता तीर है।

•

घूम आई वेदना जल, थल, अनिल, पावक-गगन में,
औ' सिमट कर रह गई अब एक वैरागी सपन में,
व्यंग्य क्या हमदर्दियां भी दें अगर आवाज तो भी
आज आने का नहीं आंसू, थके-मादे नयन में।

•

पहली-पहली बार आज ही हुआ मुझे विश्वास है,
मैं बैठा हू वहा, जहा से अवनि दूर, नभ पास है
देख रहा था ऊपर को मैं कब से सहज स्वभाव से
झाक दिया नीचे तन कापा, रुकी-रुकी सी सास है।

•

खोने को मेरा कुछ रोज रोज खोता है,
रोने के क्षण मे भी प्राण नही रोता है,
कुछ भी तो बात नही आज, किन्तु जाने क्यो
आखो से छलक पडे पानी, मन होता है।

•

जकड़ लिया था मुझे मौत ने

रुक न सका मैं वहां, जहां से आगे सदा न पथ है,
मोड़ लिया इसलिये विवश हो पीछे गति का रथ है,
जकड़ लिया था मुझे मौत ने, जीत हुई पर मेरी
बस तब इति थी मंजिल मेरी, आज हो गई सत है।

•

मैं ठोकर खा गिरा पथ से, काया अकुलाती है,
हंस तू इस भूल पर, यदि तेरी हंसी न रुक पाती है,
पर मुर्दे पर मत हंसो ! रख ध्यान, कि तेज हवा है
ऊँचे से गिरने वाले को चोट अधिक आती है।

•

यह गति मेरी नही, जिसे तू मेरी गति कहता है,
पूंज-पूंज वह दर्द, कि जिससे प्राण घिरा रहता है,
आसमान की ओर विहंगम्-दृष्टि डालने वाले
चाद था कि इतनी तेजी से वह बादल बहता है।

•

युग-युग से इस विस्तृत जग मे अभिशापित हर यक्ष।
भरा हुआ असफल प्राणो से गोल-गोल यह कक्ष।
ढाल रहा हू मैं गति अपनी, इन नयनो मे चाव
मन मे आते ही न दृष्टि ने कब छू पाया लक्ष्य है

•

कौन देगी साथ

बन्धनो की सार्थकता मानता हूं,
रूढ़ियों को तोड़ना भी जानता हूं,
कौन देगी साथ, देगी कौन धोखा
हर लहर की जात मैं पहचानता हूं।

•

जिन्दगी तूफान से डरती नही है,
प्यास में आंसू कभी भरती नही है,
लाख कोशिश कर मरें सौ-सौ बहाने
गुप्त-समझौता कभी करती नही है।

•

कितना साहस टूट गया है छोटी–मोटी प्रथम हार में,
करुणा बैठी सिसक रही है, अन्तराल के सिंह–द्वार में,
किन्तु अधिक चिन्ता करने की ऐसी कोई बात नहीं है
तेज उजाले से आया हूं, अभी हाल ही अन्धकार में ।

•

तुम ले लो हरीतिमा, हम सूखे रह लेंगे,
तुम ले लो रस–धार कि हम रज में बह लेंगे,
हरे–भरे यदि रहें चन्दनी अंग तुम्हारे
अपने बूते से ज्यादा हम दुख सह लेंगे ।

•

दर्पण हूं दर्पण में

मुझको जब ठगती तब निश्छलता ठगती है,
पीड़ा सी, करुणा सी अन्तर में जगती है,
दर्पण हू, दर्पण मैं, दर्पण वह चमकदार
एक चोट जिसके कि हज़ार जगह लगती है।

•

एक प्रश्न हर चौराहे से गति दुहराती है,
मंजिल तक कौन सी राह बोलो पहुंचाती है,
कसक पांव की मौन तोड, लघु-सा उत्तर देती
'कांटो की हर गली, कली के घर तक जाती है।'

•

गुनगुनाते ही श्रमिक–श्रम के तराने,
सो गये आसू, जगे सपने पुराने,
घेर ली उन्मुक्त कलरव ने दिशायें
उड चले पन्छी अलख घर-घर जगाने ।

●

मत कहो मुझको श्रमिक, श्रम या पसीना,
मैं सृजन, मैंने मरण से जन्म छीना,
चेतना के भाल का सिन्दूर हू मे
कुछ कहो तुम काच, दर्पण या नगीना ।

●

कुछ न पीना

आज आसव या कि अमृत कुछ न पीना,
और ही कुछ चीज है अए दर्द! जीना,
पी गये आसू न जाने उम्र कितनी
चाहता हू शेष पी जाये पसीना।

•

हो कि न हो तुम दुखी दुश्मनो! मेरे गम से,
अड़े रहो मेरी आसो के पथ मे यम से,
पर तुमको सौगन्ध सृजन-वाली वेला की
अगर न कह दो तुम आई, मेरे भी श्रम से।

•

दो या न दो मान्यता तुम मेरी क्षमता को,
मुझे विषमता भली, करूंगा क्या समता को,
अए मेरे दुश्मनो, करो तुम नफरत मुझसे
पर कह दो मा, एक बार मेरी ममता को।

●

एक रुख के साथ सौ घातें चलीं,
एक दिन के साथ सौ रातें चलीं,
स्वप्न क्या खमोश हो कर रह गया
जिन्दगी भर मौत की बातें चलीं।

●

कौन कहता है

कौन कहता है कि मुझ-सा ही सब ज़माना बने,
मेरा ही गीत हरेक होंठ का तराना बने,
कभी का बन्जारा के बीच आ-के बैठ गया
क्या ज़रूरी, कि चमन में ही आशियाना बने।

०

मुझे लगता है तू बैठी कहीं आंसू बहाती है,
शिखर पर मौन में चढ़, ज़ोर से मुझको बुलाती है,
उठा कर हाथ जब मैं ग़ाफ़िलों को हाँक देता हूं
तेरी आवाज़ में डूबी, मेरी आवाज़ आती है।

•

एक कुछ ऐसे सफर का तू मुझे आगाज दे,
जो कि गम कल का भुला दे, आज को बस आज दे,
दिन, दोपहरी--शाम बहरी मोड जब पर्दा बने
मैं तुझे आवाज दूं और तू मुझे आवाज दे।

•

किसी को गीत देता हूं, किसी को साज़ देता हूं,
बहुत खुश हो गया जिस पर, उसे सब राज़ देता हूं,
कभी जब पास में कुछ भी न रह जाता लुटाने को
तेरी सोई पड़ी आवाज को आवाज़ देता हूं।

•